बासंती

सोहनलाल द्विवेदी

रत्नदीप
के
कवि को

मधुकर,

आज वसंत बधाई।

स्वर्ण ताम्र लोहित नवपल्लव,
सुरधनु का लेकर श्रीवैभव,

खिले, खिली नीलम पल्लव से
आँगन की अमराई;
आज वसंत बधाई।

कानन-कानन उपवन-उपवन,
खिले सुमन दल, सुरभित कण-कण;

वह कैसी मदभरी पिकी ने
पंचम तान उठाई;
आज वसंत बधाई!

कोमल बाहुलता फैलाओ,
स्नेहालिंगन कुंज बनाओ;

जीवन के पतझर में सबको
मधुऋतु पड़े दिखाई।

मधुकर! आज वसंत बधाई।

१

आई मलयानिल की लहरी।

तृण तरु पल्लव हुए सजग से
कण-कण में चेतनता छहरी।
आई मलयानिल की लहरी।

लिया समेट लता ने अलकें,
खोलीं मृदु सुमनों ने पलकें,

उड़ने लगे मधुप मधु लेने
तजकर मादक निद्रा गहरी
आई मलयानिल की लहरी।

खग कुल कलरव लगे सुनाने,
पंख खोल नभ में इठलाने;

बरस रहा कुंकुम प्राची में
सुख सुहाग की बेला ठहरी
आई मलयानिल की लहरी।

गा मेरे कवि तू भी मृदु-मृदु,
बरसे विश्व प्राण मधु-मधु,

पाकर कोमल स्नेह - स्पर्श
ओ मेरी कविता! तू भी बह री।

२

नव पल्लव नव सुमन खिल उठे
नवमधु नव सौरभ छाया,

प्रणय-कुहुक कोकिल की लेकर
नव वसंत जग में आया;

कण-कण में तृण-तृण में क्षण-क्षण
प्राणोन्मादक है लहरी,

कौन खड़ा उत्सुक सुनने को
दो शब्दों का बन प्रहरी?

सघन तमाल हो उठें नीले
वन वन में नव फूल खिलें,

स्नेहांचल की उषा में—
आओ—दो बिछुड़े हृदय मिलें।

३

आज नूतन वर्ष !

बस रहा है आज मलयज
लिए अभिनव हर्ष !
आज नूतन वर्ष !

आज कलियों से अरुणिमा
कह रही कुछ बात :
नवल जीवन, नवल यौवन,
नवल आज प्रभात ;

जग रहे रंगीन सपने
मधुर आसव घोल,
हैं सुनहली कामनायें
रहीं बन-बन डोल ;

आज तरु तृण कुंज में
छाया मदिर उत्कर्ष !
आज नूतन वर्ष !

गया पतझर दूर, आया
आज मधुर वसंत,
आज पल्लव, सुरभि, मधु
का है न मिलता अंत !

दूर तुम हो, आज भेजूँ
कौन सा संदेश ?
रहो तुम भी मत पुरातन ,
सजो प्रिय ! नववेश ;

नव प्रकृति में मिलें बन नव ,
लिए पुलक प्रकर्ष ;
आज नूतन वर्ष !

४

खुल कर खिलो पद्म !

शत शत खिलें रूप के दल समुज्ज्वल ,
मधु गंध से हों सुगंधित दिशा पल ;
पाषाण निर्झर बनें, हों अचल चल ,
उर-उर जगे कामना एक चंचल ।

सुरभित बने सद्म !
खुल कर खिलो पद्म !

भू पर धरो मृदु मधु के चरण छंद ,
नूपुर बजें छिन्न हों विश्व के बंद ;
मधुमय बनो ले मिलन मुग्ध मकरंद ,
हो एक विस्मृति; हो एक आनंद !

टूटें असित छद्म !
खुल कर खिलो पद्म !

५

गाओ मधुप गान !

हो विश्व पतझर में फिर, नवल प्रात ,
मधु ऋतु खिले, खिल उठें कोटि जलजात ,
नव दल, सुरभि नव, नव मधु, नवल वात

युग युग विरस, फिर, सरस हो उठे प्राण !
गाओ मधुप गान !

गाओ प्रणय के खुले मुग्ध शत छंद ,
हो मुक्त जीवन शिथिल विश्व के बंद ;
हो एक बिछुड़े, अविच्छिन्न संबंध !

उन्मुक्त आनंद उन्मुक्त हो तान !
गाओ मधुप गान !

६

देखा क्या ऐसा रूप कहीं,
जो समा न सकता आँखों में।

जो बनकर गीत बिखरता हो,
जो पाकर स्नेह निखरता हो,

बनकर वसंतऋतु खिलता हो,
यौवन की नव-नव शाखों से।
देखा क्या ऐसा रूप कहीं,

जो जगता हो बन अभिलाषा,
हो गूँथ रहा मादक भाषा;

मन में कुछ रह-रह होता हो,
जो खुले न स्वर के पाँखों में।
देखा क्या ऐसा रूप कहीं,

जो बनता हो निशि में सपना,
सब कहते हों जिसको अपना,

जिसकी उपमा जग में दुर्लभ
जो मिले न खोजे लाखों में।
देखा क्या ऐसा रूप कहीं,

७

क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?

मेरे नयनडोर मनघट के
चिर छवि जल के कूप बनोगे ?
क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?

तृषा बनोगे इन आँखों की
प्रगति बनोगे इन पाँखों की,

मन-विहंग के नंदन कानन
मधुमय छाया धूप बनोगे ?
क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?

मीड़ बनोगे मृदु तानों की
तृप्ति बनोगे इन प्राणों की,

मेरी कविता के कुसुमों के
तरल मरंद अनूप बनोगे ?
क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?

८

ऐसा कहीं प्रेम देखा है ?

देख न पाते छल-छल लोचन,
प्रियतम का मुसकाता आनन,

नीरव रह कोमल कपोल पर,
सूख गई जल की रेखा है

ऐसा कहीं प्रेम देखा है ?

शशि आकर घन में छिप जाता,
जलनिधि हाहाकार मचाता,

तट पर पटक शीश रह जाता,
यह किस दुख का अवलेखा है

ऐसा कहीं प्रेम देखा है ?

९

मेरी निरीहता सह न सके
दृग हुए तुम्हारे आकुल से ;
तुम मौन रहे क्या कह न गए
आश्वासन बनकर व्याकुल से ;

मेरे शब्दों के अर्थ बने
मेरे अर्थों की शक्ति बने ;
निर्मम ! क्यों इतने ढले आज
मेरे मानस की भक्ति बने !

चिर मौन, रहो मेरे सुंदर ।
दो मुखर दृष्टि तुम नित अपनी ,
चिर चित्रित मेरी आँखों में
तुम सहज स्नेह के अमर धनी !

१०

नव नव रूप धरे चिर सुंदर।
मेरे अंग बसो।

बसो दृगों में नव सुषुमा बन,
श्रवणों में मधुमय मृदु गुंजन;
हृदय-कमल में मृदु पराग बन,
मधु वर्षा बरसो।

नव नव रूप धरे चिर सुंदर,

अधरों में मृदु मधुर नाम बन,
प्राणों में बनकर नव स्पंदन;
रोम-रोम में मृदुल पुलक बन,
नव जीवन सरसो।

नव रूप धरे चिर सुंदर,
अंग बसो।

११

हेरो इधर प्राण !
फेरो न तुम मुख ।

मिल जायेंगे अनजाने सभी दुख ,
खिल जायेंगे अनजाने सभी सुख ;

विष पी जियूँगा तुम्हें देख सम्मुख ।
हेरो इधर प्राण !
फेरो न तुम मुख ;

यह मंद मुसकान , यह मुग्ध चितवन ,
देती अमृत कौन ? जी सा उठा मन ;

क्या चाहिए और ? बस, हो यही रुख ,
हेरो इधर प्राण !
फेरो न तुम मुख !

१२

अब मत रहो दूर !

देखो, किरण पोंछती
फूल के आँस ,
वह खिल उठा, बह
उठी है सुरभि-साँस ;

तुम मत बनो क्रूर !
अब मत रहो दूर !

पोंछो अरुण नयन के
ये करुण विंदु ,
शीतल करो प्राण मन
हे शरद इंदु ,

अब मत रहो दूर !
अब मत बनो क्रूर ।

१३

आज वासंती-उषा है।

अरुण किरणें बनीं तरुणा
बही छवि की सुभग वरुणा,
विश्व श्री में बसी करुणा,

आज आँखों में नशा है।

डाल डाल खिले नवल दल,
पात पात खिले नवल फल,
प्रात प्रात नये सुमन दल,

रात रात मधुर निशा है।

आज कण कण कनक कुंदन,
आज तृण तृण हरित चंदन,
आज क्षण क्षण चरण वंदन,

विनय अनुनय लालसा है।

प्राण ! आई मधुर बेला,
अब करो मत निठुर खेला,
मिलन का हो मधुर मेला,

आज अधरों में तृषा है।

१४

अलि ! रचो छंद ।

मधु के मधुऋतु के सौरभ के ,
उल्लास भरे अवनी नभ के ,

जड़जीवन का हिम पिघल चले
हो स्वर्णभरा प्रतिचरण मंद !
अलि ! रचो छंद !

अमराई में अभिनव पल्लव ,
फुलवाई में मधुमय कलरव ,

नीरव पिक का स्वर गूँज उठे
सुमनों में भर आये मरंद ।
अलि ! रचो छंद !

वन वन में नव-नव पत्र खिलें
तरु से लतिकायें हिलें मिलें ।

बह चले मुक्त जीवन प्रवाह
हो शिथिल कड़ी के बंद-बंद ।
अलि ! रचो छंद !

१५

क्या नहीं मैं पास आया ?

खोल तुमने द्वार प्रतिपल,
किसे देखा विकल चंचल ?
कौन दृग में भर गया जल ?

शुष्क अधरों पर तुम्हारे
कौन बनकर हास छाया ?

क्या नहीं मैं पास आया ?

बना नीरव जगत का बन,
सुना तुमने किन्तु गुंजन,
क्या न मैं आया मधुप बन ?

हृदय-तारों के मुखर में
कौन बनकर लास छाया ?

क्या नहीं मैं पास आया ?

हुए जब मुद्रित पलक-दल ,
खोल किसने नील उत्पल ?
कर-किरण से घोल परिमल ,

प्राण के शत शत दलों में
कौन बन मधुमास छाया ?

क्या नहीं मैं पास आया ?

मैं मिला बन याचनायें ,
मैं मिला बन कामनायें ,
प्रणय की शत कल्पनायें ;

मृदुल पलकों पर मनोरम ,
कौन बनकर स्वप्न छाया ?

क्या नहीं मैं पास आया ?

१६

नयनों की रेशम डोरी से।

मत गूँथो मेरा हीरक मन
अपनी कोमल बरजोरी से।

रहने दो इसको निर्जन में
बाँधो मत मधुमय बंधन में;

एकाकी ही है भला यहाँ,
निठुराई की झकझोरी से।

अंतरतम तक तुम भेद रहे,
प्राणों के कण-कण छेद रहे;

मत अपनेपन में कसो मुझे
इस ममता की गँठजोरी से।

निष्ठुर न बनो मेरे चंचल,
रहने दो कोरा ही अंचल;

मत अरुण करो हे तरुण किरण!
अपनी करुणा की रोरी से।

१७

अधरों में मुसकान मधुर धर ।

स्वर्ण स्वप्न रचते हो प्रति पल ,
इन्द्रजाल बुनते हो कोमल ,

मेरी पलकों की प्याली में
कौन वारुणी भरते सुंदर !

फैला मोदकता का बंधन ,
बिखरा मादकता का कंचन ;

तन मन नयन बाँधते हो क्यों
डाल मृणाल जाल सी चितवन ?

किस राका के सुरसरि तट पर
दोगे आत्म मिलन का शुचि वर ?

करते हो प्रस्ताव कौन तुम
हीरक हार तार सुलझाकर !

१८

मत यह हीरक हार बिछाओ।
मत यह मुक्तामाल बिछाओ।

मेरे मन के बालहंस को
मत आमंत्रित करो बुलाओ।

जब आऊँगा मानस तीरे,
तुम समेट लोगे ये हीरे!

आशा की मृगतृष्णा में मत
तृषित क्षुधित मृग को दौड़ाओ।

अभी ढालते अमृत प्याला,
फिर भर दोगे उसमें हाला!

हे शशि! अपनी इन किरणों में
मत मेरी आँखें उलझाओ।

यह मधुमय कुसुमों का पलना,
इसमें छिपी हुई है छलना!

गंध मुग्ध दृग अंध मधुप पर
तुम अपनी करुणा बरसाओ।

१६

मधु बसंत की खिली यामिनी
चुपके-चुपके आ जाना,
सुरभि बने रजनीगंधा में
आकर प्राण! समा जाना;

चंद्र मुसकराता अंबर में
ओ शशि! तुम भी मुसकाना,
देखो, खिले नयन के तारे
जीवनधन! छवि छिटकाना;

नयनों की यमुना उमड़ी है
कालिंदी तट पर आना,
मेरे मन के वृन्दावन में
मुरली मधुर बजा जाना!

मेरी वीणा की स्वर लहरी!
आ तारों पर सो जाना,
बिलग हो सको फिर न कभी,
प्राणों में प्राण! समा जाना;

२०

मेरे मानस के मौन प्यार !
मत सुधि बन आओ बारबार !

गत सुख की आहुति डाल-डाल ,
मत धधकाओ फिर ज्वाल माल !
खींचो अपना अंचल अछोर
दृग-पट से पीतांबर विशाल !

बढ़ता ही जाता व्यथा-भार !
मत सुधि बन आओ बारबार !

रहने दो यों ही बँधी बीन ,
छेड़ो न आज फिर स्वर नवीन ,
अब फिर न बजाओ वह हमीर
हो चुका काल में जो विलीन !

खोलो न पुनः वे बंद द्वार ,
मत सुधि बन आओ बार-बार ।

दुख का कारण भी प्रवल मोह,
सुख का कारण भी प्रबल मोह,
किस भाँति बनूँ फिर वीतराग ?
जब कठिन मोह का है बिछोह !

है बँधा मोह से सृष्टि-तार !
मत सुधि बन आओ बार-बार ।

सुधि बन आओ साकार रूप,
प्राणों के कण कण में अनूप !
रह जाय न कोई भेदभाव
तुम और रूप मैं और रूप !

विस्मृति बनकर छाओ अपार !
मत सुधि बन आओ बार बार ।

२१

अब न फिर वे गीत गाओ !

यह हृदय छलनी बना है,
गीत में क्या रस घना है ?

रिक्त रहने दो अधर ये
बूँद मत मधु के चुवाओ।

आ गए तुम आज आगे,
ये नयन फिर रंग पागे,

इस जले वृन्दा-विपिन में
फिर न मृदु मुरली बजाओ।

रोक लो इस बाँसुरी को,
सुख मिले कुछ पाँसुरी को,

शूल ही में भूलने दो
फूल के बन मत दिखाओ।

हैं कभी के नयन कोरे,
स्नेह के डालो न डोरे,

दर चुका है मद कभी का
फिर न तुम मृगमद चढ़ाओ ;

मैं विरस मरुथल विकल हूँ,
जल रहा कण-कण अनल हूँ,

झुलस जाओगे हठीले !
तुम न मेरे पास आओ।

२२

कैसे कह दूँ मेरे उदार ?
मेरे मन के तुम मधुर प्यार !

क्या मोल रहेगा सरसिज का
जब निकल गई सौरभ अपार ?

पलकों से अमृत पीता हूँ,
ल में युग जीवन जीता हूँ;

खुल जाय न अपना भेद कहीं
इससे रखता हूँ बंद द्वार।

राका को अमा बनाओगे,
फिर तुम शशांक छिप जाओगे,

अधरों की तरल हँसी फिर तो
होगी वंकिम भ्रू का प्रसार।

मेरे स्वप्नों का चित्र-रंग,
फिर होगा तुमको मधुर व्यंग !

मिज़राब पहन मेरी त्रुटि का
छेड़ोगे मेरा उर - सितार।

चिर-मौन प्रणय होगा अपना,
जाग्रत न करूँगा यह सपना,

तुम समझ सकोगे कभी नहीं
मेरे मन का यह मधुर भार!

कैसे कह दूँ मेरे उदार?
मेरे मन के तुम मधुर प्यार!

२३

कोई रह रह उठता पुकार—
क्यों किया किसी से अरे प्यार !

थी चार दिवस चाँदनी रात,
जब बही प्रणय की मदिर वात,
अब खड़ी सामने सघन रात

जिसका न दिखाता कहीं पार ;
कोई रह रह उठता पुकार—

चरणों में अर्पित करके मन
क्यों तू यों बन बैठा निर्धन ?
मिलती न भीख दर्शन का कण,

तू भटक रहा है द्वार द्वार !
कोई रह रह उठता पुकार—

बहती मलयानिल मंद मंद,
गाती जाने वह कौन छंद ?
हो जाता उर का तीव्र स्पंद,

पीड़ा देती पलकें उघार।
कोई रह रह उठता पुकार—

आ जाता सुख का शीघ्र अंत
दो दिन में चल देता वसंत !
था ज्ञात न मुझको हाय हंत !

अनजाने में ही गया हार।
कोई रह रह उठता पुकार—

भर भर कर आये सुधापात्र,
पी अरुण बने दृग प्राणगात्र ;
अब तो दुर्लभ दो बूँद मात्र,

है छिन्न पड़ा वह चषक द्वार !
कोई रह रह उठता पुकार—

ममता भी होती है चंचल,
विश्वास छिपाये रखता छल,
यह था न जानता मैं दुर्बल

अब तो जीवन है बना भार !
कोई रह रह उठता पुकार—

वे दिवस गए हैं आज बीत
झंकृत फिर भी अब भी अतीत !
जैसे न हुआ कुछ भी व्यतीत,

सुधि के मधुवन में है बहार !
कोई रह रह उठता पुकार—

सोचा था है मिल गया संग
अपनी यात्रा होगी अभंग,
होगा जीवन में रास रंग,

सुख से पहुँचेंगे सिंधु पार!
कोई रह रह उठता पुकार—

पर, अब तो तरणी बनी भग्न?
माँझी जाने है कहाँ मग्न?
क्या होगी वह भी पुण्य लग्न

जब आयेगा फिर कर्णधार!
कोई रह रह उठता पुकार—

२४

क्यों ढल आये करुणा बनकर ?

अपने उर की वेदना स्वयं
क्या तुम्हें मनाने को आई ?
चल पड़े इधर चुपचाप, न तुमने
भी निज पगध्वनि सुन पाई ;

यह संभ्रम, मतिविभ्रम क्योंकर ?
क्यों ढल आए करुणा बनकर ?

अनुताप हुआ, तुम सजल हुए
खिल उठे, दग्ध हो करुणाकान्त ,
पहले से तुम हो आज अधिक
लावण्य भरे सुन्दर नितांत !

क्या अपने ही दुख में गलकर ,
तुम ढल आये करुणा बनकर !

२५

यदि मिले तुम्हें अवकाश कहीं
इस पथ से कभी निकल-जाना !

पलकों पर अलकें लहराते ;
चितवन से नव रस बरसाते ,

अपने गीतों की दो कड़ियाँ
उर के तारों पर धर जाना ।

वह निमिष मात्र का शुभ दर्शन ,
देगा मधु मुझको आजीवन ,

अपनी स्वच्छन्द मंद गति के
आनंद - मरंद वितर जाना ।

२६

अब तक आँखों में झूम रहा
वह मधुमय रूप तुम्हारा है।

लज्जा से आनत मन लोचन,
थे छलक रहे नव रस के कण,

मेरे प्राणों के मौन मुकुल में
भरी मधुर रस धारा है।

अधरों की रजत हँसी भीतर,
था कैसा छिपा हृदय कातर?

तुम नीरव थे कुछ कह न सके
यह कैसी युग की कारा है?

अब तक आँखों में झूम रहा
यह मधुमय रूप तुम्हारा है।

२७

लो समेट यह अपनी करुणा !

मरुथल ही मैं भला यहाँ हूँ
बनें न दृग ये गलगल वरुणा ।

हूँ विदग्ध, हैं दग्ध अधर पुट,
बँधता नहीं अभी कर-संपुट,

दो मधु का मत दान जले को,
अपनी प्रीति करो मत अरुणा ।

ले लो अपना सुरा पात्र ये,
दो न मुझे तुम बूँद मात्र ये;

प्यास बुझ चुकी है प्राणों की,
फिर न जगाओ तृष्णा तरुणा !

लो समेट यह अपनी करुणा ।

२८

उनके चरणों का अरुण राग।

रह रह करता मन को चंचल,
प्रतिपल बेकल प्रतिपल विह्वल,
नयनों में भर लाता है जल!

बनता आँसू के अमिट दाग़।

सुधि बन गमकाता है सितार,
बजते प्राणों के तार-तार,
आँखों में छाता बन खुमार,

यह किस नवमुरली का विहाग!

ऊषा सजती है उजियाली,
मणि मरकत पाते हैं लाली,
भरता गुलाब खाली प्याली,

उनके चरणों का पा पराग;

चुंबन लेता झुक झुक प्याला,
शरमाती मुरझाती हाला,
बलि हो जाती मुग्धा बाला;

उकसाता कैसा अमर त्याग !

वह बिखर गया सौरभ बनकर,
मधु गंध अंध बन रहे भ्रमर,
मधुऋतु ले आया कौन सुघर !

फूले पलाश ले नई आग।

सिंदूर विंदु में मधु लाता,
मेंहदी में नवश्री धर जाता,
गालों पर लाली बन छाता,

लज्जा पा जाती है सुहाग !

इस लाली से जग की लाली,
इस लाली से सब हरियाली,
इस लाली से श्री श्रीवाली,

है अंग अंग में अंगराग,
उनके चरणों का अरुण राग;

किसी प्रकृति के निभृत कुंज में
हो अपना नीरव संसार,
कानन कुसुम किया करते हों
जिसका नित नूतन शृंगार;

अपने मन की मधुधारा-सी
बहती हो पदतल सरिता,
स्वर्ण सूर्य, और रजत रश्मियाँ
देती हों दिन रात बता,

इस कोलाहलमय जगती की
जहाँ न जाती स्वर लहरी,
शांत प्रहर हों खड़े टहलते
बनकर कुटिया के प्रहरी,

आदि प्रकृति का नित्य निरंजन
बजता हो अनादि संगीत,
दो प्राणों के मधुर मिलन में
जहाँ न खड़ी हुई हो भीत,

जहाँ अमर विश्वास प्रीति-
लतिका को करता हरा भरा,
नहीं कहीं छल का आतप
विदीर्ण करता हो वसुंधरा,

मृग-शावक प्रत्यय से आकर
पास अंग सुहलाते हों,
दूर्वा के नव-नव अंकुर को
छीन हाथ से खाते हों;

शुक पिक कहते हों आग्रह से
अपने सुख-दुख की गाथा,
सब प्राणों में एकतार हो
रह-रह झंकृत हो जाता,

हिम गिरकर अपने आँगन में
बिछ जाती चाँदनी बनी,
स्वर्ण सरित बहती हो प्रातः
छू जाते ही किरण अनी,

स्वस्थ रक्त की अरुण लालिमा
कांति बनी हो आनन की,
शुद्ध-स्नेह से पा जीवन-रस
दीप्ति खिल उठी हो मन की,

ऐसे किसी प्रकृति के आँगन में
भी क्या कुछ दुख होगा,
वहीं कटे जीवन दोपहरी
तो फिर कितना सुख होगा!

३०

वंकिम आज भृकुटि की रेखा।

वह पहले का प्यार नहीं है,
बहती वह रसधार नहीं है,

लहराती शाली के ऊपर
आज प्रलय-घन घिरते देखा।

वह पहले की बात नहीं है,
बहती सुरभित वात नहीं है,

वीणा के कोमल पर्दों पर
खिंची तीव्र स्वर की अवलेखा।

पाकर जिसकी शीतल छाया,
हरा बना जीवन औ' काया,

लगे खींचने वे ही अंचल
कौन लिखेगा दुख का लेखा!

३१

बरसे स्नेह सुधा की धारा।

खिलें मिलन से नयन कमल-दल,
बाहुलता फूले हों चंचल,

अधरों के मादक प्यालों से
ढले नवल-मधु-प्यारा।

बरसे स्नेह सुधा की धारा।

खुलें शिथिल हो सुरभित अलकें,
झुकें लाज से मद भर पलकें,

चंचल पद हो अचल, पाणि
दे प्रिय को मदिर सहारा।

बरसे स्नेह सुधा की धारा।

३२

गोपन कौन कथा, रही अब ?

खुली हृदय की शत पंखुड़ियाँ,
देखीं तुमने लड़ियाँ-लड़ियाँ,

देखी हर्ष व्यथा, सभी जब !
गोपन कौन कथा, रही अब ?

नहीं छिपाया तुमसे मन का
कर्म कभी अपने जीवन का ;

सब आवरण वृथा, आज तब,
गोपन कौन कथा, रही अब ?

आई है मधु ऋतु की बेला,
सोचो, माँग रही क्या खेला,

कैसी प्रीति प्रथा, रही कब ?
गोपन कौन कथा, रही अब ?

३३

जल-जल में अपनी परछाहीं ।

अपनी आँखों का अरुण रंग
देता है सबको गलबाहीं ;

अपना ही तम जग में छाता ,
अपना प्रकाश मधु बरसाता ,

शीतल जो अपनी छाँह बनी
तो शीतल है जग की छाँहीं ।

तन मन धन जीवन का संबल ,
चाहता किसी प्रिय का अंचल ।

मन-घट जो मधु से भर देता ,
उसको न निकलती है 'नाहीं' ।

३४

सुनता हूँ नित्य ही तुम्हारा
प्रेमभरा मादक आह्वान,
मुझे बुलाते रहते हो क्यों,
उठा निरंतर आकुल तान !

लोल लताओं के झुरमुट में
छिपा हुआ कोई संलाप,
तुम्हें गुदगुदाता रहता क्या
खिल उठता बन कर सुरचाप !

क्षणिक रहेगा या कि चिरंतन
यह मन का मधुमय व्यापार !
सोचा है क्या यह भी तुमने
वहन कर सकोगे यह भार !

अपनी वीणा के तारों से
पूछो क्यों यह स्वर्ण विहान !
मुझे बुलाते रहते हो क्यों
उठा निरंतर आकुल तान !

३५

क्यों रूपराशि पर इतराते !

रजनीगंधा जो आज खिली,
झोंका आया, कल धूलि मिली,

इस नश्वरता को बरकाते,
क्यों रूपराशि पर इतराते !

मधु मिला, कुसुम तो पिला चलो
सौरभ से जग को हिला चलो,

क्यों आँख बचाकर, सकुचाते !
क्यों रूपराशि पर इठलाते !

३६

वे यौवन के मदिर प्रहर थे।

शशिमुख की उजियाली में जब,
सोये भूल व्यथायें हम सब,

इन अधरों के निकट अधर थे।

बिखरी थीं घुँघराली अलकें,
मीलित थीं मदिरामय पलकें,

दृगघट नवमधु से निर्भर थे।

नयन घुले नयनों में जाकर,
प्राण घुले प्राणों को पाकर,

वे विस्मृति के पल सुखकर थे!

३७

वह कहाँ रूप की झलक मिली
जिससे पलकें हैं मतवाली ?

वह कौन अनाम रूप रस था ?
मन मुग्ध बना-सा बरबस था,

दी पिला कौन सी मदिरा
अब तक इन आँखों में है लाली ?

बस गई कौन उर में चितवन ?
मन में छाया कब से मधुबन ?

मधु कौन प्रेमघन बरस गया ?
जिससे है मन में हरियाली !

३८

आई फिर संध्या की बेला।

गोधूली है पथ में छाई,
अँधियाली ने ली अँगड़ाई,

नभ में तारक एक अकेला।
फिर आई संध्या की बेला।

निशि ने करुणांचल फैलाया,
श्रान्त विश्व को शान्त बनाया,

किया मलय मारुत ने खेला।
फिर आई संध्या की बेला।

मधुर मिलन उत्कंठा जागी,
चकई चली स्नेह में पागी,

निष्ठुर हो प्रिय की अवहेला।
फिर आई संध्या की बेला।

३६

छोड़कर तुमको यहाँ पर सार क्या है ?
पूछता हूँ मैं कि यह संसार क्या है ?

क्या नहीं नर ने इसे रौरव बनाया ?
क्या न तुमने स्वर्ग है इस पर बसाया ?
विश्व आतप ने हमें जब जब तपाया,
नील नीरद ! क्या तुम्हीं ने की न छाया ?

फिर, अनर्गल विकल हाहाकार क्या है ?
छोड़कर तुमको यहाँ पर सार क्या है ?

जब उपेक्षा से सभी दृग मींचते,
क्या तुम्हीं मन को न मधु से सींचते ?
जब कलंक-कलुष अनेक उलीचते,
क्या तुम्हीं ही वे शर न विष के खींचते ?

और ईश्वर का यहाँ अवतार क्या है ?
छोड़कर तुमको यहाँ पर सार क्या है ?

क्या तुम्हारी ही रसीली स्निग्ध चितवन
है हरी रखती नहीं यह विश्व उपवन ?
और बंकिम भृकुटि का वह कुटिल नर्तन ,
क्या न दुर्दिन के बुला लाती प्रलय-घन ?

जानता हूँ जीत क्या है, हार क्या है !
छोड़कर तुमको यहाँ पर सार क्या है ?

तुम रहो फिर चाहिए क्या और सम्मुख ?
स्वयं ही हो जायँगे क्षय ये सभी दुख !
तुम रहो अनुकूल, हो प्रतिकूल जगरुख ,
कुछ न होगा, हटेगी निशि, खिलेगा सुख ;

जानता हूँ विश्व का आधार क्या है ,
छोड़कर तुमको यहाँ पर सार क्या है ।

४०

लो, वसंत-प्रभात आया।

फूल हैं कितने खिले अब,
गिन सकेगा कौन ये सब?

मंद मलयानिल सभी की सुरभि औ' मकरंद लाया।
लो, वसंत-प्रभात आया।

खिल उठीं किरणें गगन पर,
स्नेह के ज्यों भाव मन पर,

अलक सुहला, पलक छू, रस छलक कर किसने गिराया?
लो, वसंत-प्रभात आया।

शीत ले हम-चीर भागी,
आज स्वर्णिम उषा जागी,

द्वार पर देखो तुम्हारे, कुसुमकुल कितने चढ़ाया?
लो, वसंत-प्रभात आया।

४१

आज चित्त उदास क्यों है ?

खिल रहे हैं सुमन वन-वन,
हँस रहे हैं कुंज-कानन,

हर्ष के हिल्लोल में फिर वेदनामय श्वास क्यों है ?
आज चित्त उदास क्यों है ?

सृष्टि है इतना लिये सुख,
रह न पायेगा कहीं दुख,

चलो उपवन में हठीले, सुरभिमय वातास क्यों है ?
आज चित्त उदास क्यों है ?

कह रही है प्राण ! आओ,
आज सब-कुछ भूल जाओ,

प्रकृति से हिलमिल रहो, फिर जान लो उल्लास क्यों है ?
आज चित्त उदास क्यों है ?

४२

आज कोयल बोलती है।

रक्त के कण-कण उछलते,
किस नदी के कूल चलते?

विरस प्राणों में सरस रस कौन बरबस घोलती है!
आज कोयल बोलती है।

कुहू-कुहू की ध्वनि निराली,
क्या मधुर स्वर से निकाली,

बंद-सी वीणा हृदय की आज निज-स्वर खोलती है।
आज कोयल बोलती है।

कह रही ऋतु-कुसुम आया,
वर्ष का नवहर्ष छाया,

ताम्र आम्र बने छटा ले, आज दुनिया डोलती है।
आज कोयल बोलती है।

४३

ज़रा सरसों तो निहारो।

खेत में खलिहान में क्या ?
राह में मैदान में क्या ?

बिछा है कुंकुम मनोहर, भर रही है दिशा चारों।
ज़रा सरसों तो निहारो।

स्वर्ण की सरिता बही है,
आज अतिसुंदर मही है,

सुखद पीतांबर लहरता किस रसिकमणि का विचारो।
ज़रा सरसों तो निहारो।

रूप के इस कनक जल में,
तैरतीं आँखें अतल में,

क्या उषा लेटी धरा पर, हृदय के मधुबिंदु ढारो।
ज़रा सरसों तो निहारो।

४४

आज गृह छोड़ो हठीले !

आज वन-वन और उपवन ,
छा रही मधुऋतु, मदिर मन ,

कुंज-कानन, लता, तरु, तृण सजी सुषमा नई-सी ले।
आज गृह छोड़ो हठीले !

आज सघन रसाल बौरे ,
श्याम घन-से घिरे भौंरे ,

माधवी के दूत बनकर कूजते कोकिल रँगीले।
आज गृह छोड़ो हठीले।

कुंज-कुंज लता खिली है ,
पुंज-पुंज सुरभि हिली है ,

आज मग में और पग-पग, नवलश्री बिखरी, रसीले !
आज गृह छोड़ो हठीले !

४५

आज वासंती पवन है ।

मंद-मंद समीर आती,
अब न अन्तस् को कँपाती,

और अपनी मृदु लहर में लिये कुछ नवसुरभि-कण है ।
आज वासंती पवन है ।

पलक पर अलकें बिखरतीं,
कामनाएँ हैं निखरती,

हृदय-कलिका खोलकर यह कौन गाता सनन-सन है ?
आज वासंती पवन है ।

एक मदिर हिलोर आती,
नयन, तन, मन बोर जाती,

कह रहा कोई, नहीं कुछ, कुसुम-ऋतु का आगमन है ।
आज वासंती पवन है ।

४६

अब कहीं पतझर नहीं है।

पत्र पीले सभी टूटे,
जरा के ज्यों केश छूटे,

आज कायाकल्प है, नवदल, जहाँ देखो, वहीं है।
अब कहीं पतझर नहीं है।

आज तरु की धमनियों में,
दलों, शाखों, टहनियों में;

रक्त-सा है छलछलाता, धार यौवन की बही है।
अब कहीं पतझर नहीं है।

भाग्य योंही आ मिलेगा,
हर्ष का जीवन खिलेगा;

कह रहा यह कौन? सुन, पतझर जहाँ मधुऋतु वहीं है।
अब कहीं पतझर नहीं है।

४७

कह रहा मधुमास सुन लो।

घूम लो तुम कुंज-वन में,
झूम लो ले सुरभि मन में,

फूल-शूल सभी विपिन में, शूल छोड़ो, फूल चुन लो।
कह रहा मधुमास सुन लो।

तजो सब मन की उदासी,
हो प्रसन्न सदा प्रवासी,

दो दिनों का खेल है, आँसू हटाओ हास बुन लो।
कह रहा मधुमास सुन लो।

प्रकृति जब उल्लासमय है,
सृष्टि नवसुख लासमय है।

तब तुम्हीं क्यों खिन्न मन में रसभरी मृदु तान सुन लो।
कह रहा मधुमास सुन लो।

४८

सुमन का है लगा मेला।

कौन तरु जो नहीं फूला,
हर्ष से जो नहीं भूला।

घूमते हैं मधुप वन-वन सुरभि-मधु का मचा खेला।
सुमन का है लगा मेला।

सब अनूठे वसन पहने,
रंग के अनमोल गहने,

झूमत हैं लता-बेलें, है नहीं कोई अकेला।
सुमन का है लगा मेला।

और वनमाली अभी तुम,
यहीं गृह में बुला कुम;

भरो मानस कामना भर, प्रकृति ने सब मधु उँडेला।
सुमन का है लगा मेला।

४६

उस दिन पहुँचा मैं सध्या में
वह बैठी थी करुणा-समान,
थे शुष्क अधर, बिखरी अलकें
उन्मन उन्मन मुख कांति म्लान।

मैं उन्मद था अपने सुख में
दे सका न उस पर तनिक ध्यान।
बोला, उठ मुझे प्रणाम करो,
उसने दी अंजलि प्रणति दान।

पर, लहराई उसके मुख पर,
दुख की गहरी छाया कठोर,
जड़-सी बनने के लिए चली
उसकी चेतन ममता अछोर!

मैं मर्माहत हो, उठा विकल
यह क्या कर बैठा यों अजान,
मेरी मानस की हलचल का
हो गया सहज ही उसे ज्ञान।

जाने कितनी ममता करुणा,
लज्जा, अनुनय से सजा दृष्टि,
देखा अपांग से मुझे, किया
मेरे मन में आनंद वृद्धि!

जब सुधि आती है उस क्षण की
हो जाते मेरे द्रवित प्राण,
पाषाण सदृश मैं हूँ कितना?
वह कोमल निर्झर के समान!

जब सुधि आती है उस क्षण की
छा जाती आँखों में चितवन,
कमलायत दृग की सजल कोर
उमड़े जिनमें करुणा के घन!

५०

जिस दिन, तुम आये प्राण ! पास ।

उस दिन, सुलझी युग की उलझन,
मन में मद भर लाई सुलझन,
तब से मन में सुखमय कंपन,

नयनों की उत्सुक स्निग्ध दृष्टि
ढूँढा करती पद नख प्रकाश ;

जब रोम-रोम में भर सिहरन,
दृग में अनुराग भरी छलकन,
कर—संपुट में पागल पुलकन,

मेरी अलकों में मृदुल अरुण
था किया उँगलियों ने विलास ;

मन मुग्ध, दुग्ध-सी दृष्टि धवल,
पलकें झुकतीं ले लाज नवल,
था रोम-रोम में अर्पण जल ;

मैं मुग्ध बना था स्वयं आज
यह देख तुम्हारा छवि विलास ;

उस सरल परस का सुहलाना,
विस्मृति का पलकों पर आना,
उस दिन मैंने मन में जाना;

पलकों से उतर, प्राण में घुल,
बन जाना एक अमर हुलास!

तुमको अबतक निज दिया रूप,
तुमने उस दिन दे मुझे रूप,
बन गए विश्व-छवि तुम अनूप,

तब कहा किसी ने होता है
यों प्रथम प्रणय का नव विकास!

तबसे पतझर में खिले फूल,
हो गए तिरोहित विषम शूल,
मैं सुख के मद में गया भूल,

जग ज्योतित मधुमय दीख पड़ा,
जो था पहले तम का निवास;

उस दिन की सुधि लेकर मादक,
मैं बना आज युग का ाधक,
श्रीपद का युग-युग आराधक,

बजता रहता उर का सितार
नव गीत बिखरते अनायास!

५१

वीणा के बिखरे तारों पर
जगे नहीं मादक अनुराग,
एक तंत्र हो, कर नर्तन हो
बरसावे न मरंद पराग,

नीरव निर्जन में न विकल हो
आमंत्रण की करुण पुकार,
तब तक मेरी करो प्रतीक्षा
खोले रहो कुटी के द्वार!

सागर का विक्षुब्ध अंतस्तल
नहीं उलीचे अतल हिलोर,
रत्नराशि तट पर न डाल दे
दिखलाने को प्राण मरोर;

ले जाने को खींच पार तक
उमड़े नहीं पुलक ले ज्वार,
तब तक मेरी करो प्रतीक्षा
खोले रहो कुटी के द्वार!

कुवलय कानन की पंकजश्री
खिले न अरुण लिए नव गंध,
कमल नाल, उत्तिष्ठ एक पद
पथ न निहारे, पलक अमंद;

कलिका फूल न बने मुग्ध हो
हो विमुग्ध अलि की गुंजार,
तब तक मेरी करो प्रतीक्षा
खोले रहो कुटी के द्वार!

तरु का कंदन, पुष्प वृक्ष के
ज्योति दीप की हो न प्रसन्न,
अक्षत गृह के, अर्ध कलश का
एक न हो मिल कर आसन्न;

इन्द्र धनुष सी हो न प्रार्थना
पूर्ण न अर्चन का संभार,
तब तक मेरी करो प्रतीक्षा
खोले रहो कुटी के द्वार!

जीवन के मृत्पात्र दीप पर
हो न तरंगित अतुलित स्नेह,
जले वर्त्तिका मधुर व्यथा की
बरसे चाहे पावस मेह,

दीपशिखा की कृशांगता पर
हो न शलभ का चंचल प्यार,
तब तक मेरी करो प्रतीक्षा
खोले रहो कुटी के द्वार!

५२

बिक चुका बेमोल प्रिय !
मैं तो तुम्हारे बोल पर,
अब मुझे तोलो न फिर
अपनी निकष के तोल पर।

गिर न जाऊँ मैं कहीं,
दुख हो तुम्हारे हर्ष को,
अब झुलाओ मत मुझे
मृदु बाहु के हिंदोल पर!

टिक सकूँ बन पग-परस
हो अर्चना के फूल ही,
लाज की लाली बना
साजो मुझे न कपोल पर।

रह सकूँ उर में तुम्हारे
एक हल्की याद बन,
साथ ले घूमो न तुम
भूगोल और खगोल पर।

५३

तुम शकुंतला-सी कौन,
सींचती हो यह किसकी फुलवारी ?
कोमल मृणाल कर, लिए सुभग घट
अर्ध-विनत, छवि बलिहारी !

लहराती लोल लताओं के
नीचे लेकर नूतन किसलय,
हीरक नख से अंकित करने
बैठी हो कौन पत्र मधुमय ?

तुम चन्द्रकला-सी शुचिनिर्मल,
नीचे कुंद कली-सी मृदु उज्ज्वल,
तुक कौन महाश्वेता-सी
पावनता की दिव्य ज्योति कोमल ?

क्या पुंडरीक - विरह - व्यथिते !
तज करके निर्जन कानन को ?
अधरों के माणिक शैल खंड पर
बैठी हो हरि-चिंतन को ?

तुम किस ललना की ललित लली,
तुम किस तड़ाग की कुमुद कली?
प्राणों में मधु बरसाती हो
लहरा लावण्य लता लवली।

तुम दमयंती सी कौन? भेजती
किस नल को अपना सँदेश?
उज्ज्वल पंखों के राजहंस को
विदा कर रही दूर देश?

मधुमय वसंत की संध्या सी,
मतवाली स्त्री गंधा सी,
सौरभ का अंचल फैलाती
फिरती अरण्य की बनिता सी?

बन में कोकिल-सी बोल रही
बन हेम वल्लरी डोल रही,
तुम कौन कल्पना-सी उठकर,
कवि की प्रतिभा को खोल रही,

सजती हो भोले आनन में
जैसे शिशु शशि की अवलेखा;
मिट जाती हो खिंचकर ऐसे
ज्यों घन में कंचन की रेखा!
दुर्लभ दरिद्र की आशा सी
विधवा की मधु अभिलाषा सी,
किसके प्रेयसि की सुषमा की
टूटी फूटी परिभाषा-सी?

क्या तुम कुबेर की कन्या हो
कौतुक से रह रह हेर रही ?
मंजुल माणिक मंजूषा से
हीरों की कनी बिखेर रही !

मलयज की शीतल लहरी-सी,
सुखमय छाया सी छहरी सी,
पलकों में ढलती आती हो,
मधुमय निद्रा बन गहरी-सी !

आवर्त कोपलों पर लेकर,
बहती तुम क्या क्या छल करने ?
वह हुआ तिरोहित पल ही में
जो आया तुम्हें पार करने ?

बन मालिन ! क्या तुम गूँथ रही
लघु हर श्रृंगार की मृदुमाला ?
जूही की कच्ची कलियाँ ही
क्यों तुमने हाय पिरो डाला ?

भीलनी ! बजाती हो कैसी
यह वीणा मादक राग भरी,
उठ रही गमक उठ रही मीड़
उठ रही मूर्छना भी गहरी !

अब धरो तार पर मत उँगली
कर चुकी पार अंतस्तल में,
वह तान तुम्हारी मतवाली
बन बाण अधखिले कुड़मल में ?

निर्मल सरसी में लहर उठी
कैसी माधवी विलास लिए !
मृदु मंद पवन आंदोलित हो
आमोद मदिर आवास लिए !

निर्मोही रघुपति की सीते !
निर्वासित कूल कगारों में,
बनकर विषाद की काया क्या
बैठी विक्षिप्त विचारों में ?

तुम चली कहाँ ? ओ कनक किरण,
किस सरसिज में पराग भरने ?
किन लोल लहरियों में तरने
किस तिमिर लोक का तम हरने ?

५४

प्रबल झंझावात में तू बन
अचल हिमवान रे मन !

हो बनी गंभीर रजनी,
सूझती हो नहीं अवनी;

ढल न अस्ताचल अतल में
बन सुवर्ण विहान रे मन !

उठ रही हो सिंधु-लहरी,
हो न मिलती थाह गहरी

नील नीरधि का अकेला
बन सुभग जलयान रे मन !

कमल कलियाँ सकुचती हों,
रश्मियाँ भी बिछलती हों,

तू तुषार कुहा गहन में
बन मधुप की तान रे मन !